कामिल ख़ज़ाना

मैं क्यों अल-मसीह का पैरोकार हो गया

इमामुद्दीन

कामिल ख़ज़ाना

मैं क्यों अल-मसीह का पैरोकार हो गया

इमामुद्दीन

kāmil ḳhazānā. maiṅ kyūṅ al-masīḥ kā pairokār ho gayā.

The Perfect Treasure. Why I Became a Follower of al-Masih

by Imam ud-Din
(Urdu—Hindi script)

© 2018 Chashma Media
published and printed by
Good Word, New Delhi

Bible quotations are from UGV.

for enquiries or to request more copies:
askandanswer786@gmail.com

मेरी पैदाइश ज़फ़रवाल ज़िले सियालकोट पंजाब में हुई। जब मेरी उम्र दस बरस के क़रीब थी, मैं उन ईसाई साहबान से जो मुनादी करने को शहर में आया करते थे अकसर मिलता था। गो उस उम्र में मुझे किसी मसले के फ़ैसल करने की लियाक़त न थी तो भी मैं उनकी मुहब्बत से बहुत मुतअस्सिर हुआ। बाज़ारी मुनादी के वक़्त वह बड़े सब्र से जाहिल लोगों को बरदाश्त करते थे। यह देखकर यह बात मेरे दिल में गड़ गई कि इन साहबों के पास कोई न कोई ऐसा बेशक़ीमत ख़ज़ाना है जो हमारे मुसलिम बुज़ुर्गों के पास नहीं है। जब शहर के लोग उन के पीछे हिक़ारत से तालियाँ बजाते और मेरे हममकतब उनके शरीक होते तो मेरे दिल में अजब तरह का रंज पैदा होता था। जब मैं उन्हें इस नाशायस्ता हरकत से बाज़ रहने को समझाता तो वह मुझसे भी मुख़ालफ़त करते थे।

इसी वजह से मैं अकसर छुपकर ख़ादिमुद्दीन के पास जाया करता था। उस वक़्त मैं काफ़ी दीनी और अख़लाक़ी मसायल से वाक़िफ़ हुआ। किसी ने मुझे ज़बूर और यूहन्ना की इंजील भी दी।

इनके अलावा मुझे दूसरे रिसाले भी वक़्तन फ़वक़्तन मिलते रहे, जिनमें देखा करता था। मेरे दिल में इस पाक चश्मे की एक क़ुदरती मुहब्बत थी। और अगरचे अल-मसीह को ख़ुदा का बेटा कहना ऐसा ही कुफ़र समझता था जैसा कि मुसलिम बुज़ुर्ग समझते हैं, फिर भी मैं समझता था कि लफ़्ज़ बेटा ज़रूर कोई हक़ीक़ी मानी रखता होगा जिसे हमारे मुसलमान भाई तास्सुब के मारे मंज़ूर नहीं करते।

तीन-एक बरस ऐसा ही कुछ हाल रहा। उस वक़्त तक कमसिनी के सबब इतनी जुर्रत नहीं थी कि खुले तौर पर ऐसे मसायल अपने उस्तादों से या वालिदैन से दरियाफ़्त करूँ। मगर एक बार एक देसी मुनादी करनेवाले ने मुझे क़ुराने-शरीफ़ की एक आयत लिख दी जिसमें आँहज़रत के मोजिज़े से इनकार था। मैं उस आयत को अपने मौलवी साहब के पास ले गया। लेकिन जवाब के बदले मैंने सज़ा पाई और हुक्म मिला कि फिर कभी उन काफ़िरों के पास मत जाना।

उन दिनों में मैं अपने बड़े भाई के हाँ गया जो सदूवाला इलाक़े गोगेरा में बसते थे। उनके पास से मुझे इंजील का एक नुसख़ा मिला। वह मुझे ईसाई उस्तादों की तालीम याद दिलाती थी, वरना उस जंगल में कई-एक बरस तक दो देसी ईसाई वायज़ों के सिवा कोई और ख़ादिमुद्दीन तशरीफ़ न लाया।

मुझे जब भी अपने आलिमों और दरवेशों की सोहबत का मौक़ा मिलता तो उनकी बातें दिल के कानों से सुनता था। दीने-मसीही की जो थोड़ी-सी रौशनी दिल में थी उससे मैं उन बातों की जाँच करता रहता था। एक बार मुल्तान के सज्जादा-नशीनों में से एक उम्ररसीदा पीर साहब बड़ी शानो-शौकत के साथ सदूवाला में आए। शहर के बुज़ुर्ग उनके इस्तिक़बाल को गए। बड़ी धूमधाम से दावतें कीं। मौक़ा पाकर मैंने उनसे तनहाई में अर्ज़ की, "हज़रत! क़ियामत की बाबत मेरे दिल में बड़ी दहशत है। जिस वक़्त सूरज सवा नेज़े पर होकर अपनी बारह आँखें खोलेगा और ज़मीन ताँबे की होगी उस वक़्त मुझ गुनाहगार का क्या हाल होगा?"

पीर साहब ताज्जुब की निगाह से मेरी तरफ़ देखने और प्यार से फ़रमाने लगे, "बेटा! मेरे बाल सफ़ेद हो गए। पर मौत की बाबत तो अफ़सोस कि अब तक कुछ नहीं सोचा।"

इस ना-उम्मीदी के जवाब ने मुझे और भी तलाश के लिए उभारा। यह ख़याल आया कि अगर तसल्ली है तो सिर्फ़ ईसाई दीन में है। 1864 में मौलवी सफ़दर अली के ईसाई हो जाने की ख़बर मिली। मौलवी साहब 1860 में क़िस्मत मुल्तान में डिप्टी इंस्पेक्टर मदारिस की हैसियत से ज़िले गोगेरा के मदारिस को भी देखते रहे थे। साथ साथ वह पाकपतन और दीगर कई ख़ानक़ाहों में रियाज़त और शबबेदारी करते हुए वहाँ के दरवेशों में सच्चे मुरशिद और ख़ुदा की सच्ची राह की तलाश में हैरानो-परेशान इधर-उधर फिरते रहे

थे। मौलवी साहब मशहूर आलिम थे, इसलिए उनके ईसाई होने की ख़बर मिलकर मुझे बड़ा ताज्जुब हुआ। मगर साथ साथ मेरे दिल में ख़ुशी और शौक़ भी पैदा हुआ कि किसी न किसी वक़्त इस अज़ीम नेमत पाने से दिली तसल्ली हासिल करूँ।

उसी साल के आख़िर में मुझे ज़िले की तरफ़ से गवर्नमेंट नॉर्मल स्कूल लाहौर जाने का इत्तफ़ाक़ हुआ। वहाँ पहुँचकर मैंने स्कूल के उस्ताद मौलवी इमादुद्दीन लाहिज़ साहब को तहक़ीक़े-मज़हब में मशग़ूल पाया। यों मुझे उनकी सोहबत पाने और मज़हबी मुबाहसों में जाने के बहुत मौक़े फ़राहम हुए।

तक़रीबन एक साल के बाद मैं अमृतसर मिशन स्कूल में रियाज़ी का उस्ताद मुक़र्रर हुआ। उस वक़्त ख़ुदावंद की मुहब्बत ने मुझे खींच लिया, और मैं बफ़ज़ले-तआला सितंबर 1866 को बुज़ुर्ग क्लार्क साहब के हाथ से बपतिस्मा पाकर उस मुनज्जी के पैरोकारों में शामिल हुआ।

इमामुद्दीन पंजाबी ज़बूर के मशहूर शायर हैं,
एक ऐसा शाहकार जो कभी नहीं भूला जाएगा।